ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
ISSN No.: 2347-2944, RNI:UPBIL04292, REG. No.: 561/2013-2014 Vol.-2, No.-2, PP-335-339,YEAR-2015

समीक्षावाद क्या है? एवं समीक्षावादी कला प्रवृत्ति का जन्म

❑ डॉ0 अमृत लाल

सार – *समीक्षावाद आधुनिक भारत का प्रथम स्वदेशी तथा मौलिक कला आन्दोलन है। इसके पूर्व आधुनिक भारत में बंगाल कला प्रवृत्ति (शैली) के नाम से एक आन्दोलन विकसित हुआ, किन्तु वह नव–शास्त्रीयतावादी था और प्राचीन कला की मान्यताओं को पुनः प्रतिष्ठा प्रदान कराना चाहता था। समीक्षावाद का ऐसा कोई आग्रह नहीं है। वह प्राचीन भारतीय काल को अपनी सोच का आधार भूमि मानता है, जिस पर खड़ा हो कर वह नई सम्भावनाओं को और प्रयास करता है। बंगाल कला आन्दोलन तथा समीक्षावादी कला आन्दोलन के बीच भारत में जो कला प्रवृत्ति प्रचलित रही है। उसकी मूख्य प्रकृति पाश्यात्य आधुनिक कला प्रवृत्तियों का अध्ययन, अनुकरण तथा अनुशीलन ही था। इसलिए उसे भारतीय कला का कोई मौलिक आधुनिक कला आन्दोलन नहीं माना जा सकता। इस दृष्टि से समीक्षावाद भारत में प्रथम आधुनिक कला का मौलिक तथा स्वदेशी जन–आन्दोलन का जन्म हुआ।*

समीक्षावाद क्या है और समीक्षावादी प्रवत्ति का जन्म– "समीक्षावाद" भारतीय आधुनिक कला का एक सशक्त आन्दोलन है, जिसने भारतीय आधुनिक कला को पाश्चात्य आधुनिक कला के प्रभाव से मुक्त कर एक मौलिक भारतीय स्वरूप प्रदान करने का प्रयास किया है। कला को समाज की वर्तमान समस्याओं से जोड़कर, सरल, स्पष्ट, कलात्मक भाषा में व्यंग्यात्मक एवं प्रतीकात्मक स्वरूप प्रदान कर सर्वग्राह्य बनाया है। –प्रो० रामचन्द्र शुक्ल

"हम एक कदम और आगे बढ़ने जा रहे है। समीक्षावादी कला की बागडोर सहज कला को सौप देने के लिए क्योकि कितना ही हम तेर ले, पानी के दीि विस्तार को नाप लें, पर आना तो सहजतः किनारों पर ही होगा। जल आकाश की असीम सीमाओं को छूकर भी अन्ततः भूमि ही हमारा पाथेय है। अतः कितने ही दोलन, कितने ही उतार–चढ़ाव, कितने ही हलचलें, और कितने ही आन्दोल विस्तार ले, पर उन्हें सहज रूप में आने पर ही स्वीकारा जा सकता है। अतः अन्त में हमें कला के सहजवाद (समीक्षावाद) को स्वीकार कर सहज विधि–विधान द्वरा प्रस्तुत करके जन–जन के मन तक उतारना है।

–गोपाल मुधकर चतुर्वेदी

"समीक्षावाद" कला का मूल उद्देश्य मानव की सूक्ष्म भावनाओं को इस प्रकार मूर्त रूप प्रदान करना है कि वह सहज ही अन्तरतम् को छू लें और सहज ही ग्रहण हो जाये। एक सरल भाषा के रूप में अव्यक्त को व्यक्त कर लें।"

–बालादत्त पाण्डे

समीक्षावाद अपने देश में उभरा समकालीन कला का प्रथम मौलिक आन्दोलन है, क्योंकि कि इस कला प्रवृत्ति वाले कलाकारों ने उपरोक्त पश्चिमी कला प्रवृत्तियों को सोच समझकर जानबूझ का नकारा और उनसे अलग हट कर अपना मौलिक रास्ता बनाने का प्रयास किया है। समीक्षावादी कला मूलतः प्रतीकवादी है और उनकी कला की आधारशिला वर्तमान भारत की आशा, आकांक्षा, आवश्यकता, सामाजिक, आर्थिक,, राजनैतिक, सांस्कृतिक परिस्थितियों, समस्याएं, सोच समझ और चेतना ही है। उन्होंने पश्चिमी आकारवादी, अनबूझता , सूक्ष्मकारिता, अर्ध या सुप्त चेतना,, आदि। प्रवृत्तियों से अलग हटकर, आ.तिक मूलक चित्र बनाये है और अभिव्यंजना सरल जाने पहिचाने प्रतीकों के माध्यम

एसोसिएट प्रोफेसर– ललित कला विभाग, मेरठ कॉलेज, मेरठ (उ0प्र0) भारत

से तीरवी व्यंगात्मक शैली में, पूर्ण सामाजिक चेतना के साथ की है। समीक्षावादी चित्रकारों की कोशिश है कि वे ऐसे चित्र बनाये जिनको समझने में भाव ग्रहण करने में कोई परेशानी न हो। उनकी कला विचारपरक है, आकारवादी नहीं। उनकी कला तत्व प्रधान है, जो पाश्चात्य आधुनिक कला में प्रायः लुप्त हो चुकी है। वे तकनीक तथा कौशल को लक्ष्य नहीं समझते बल्कि माध्यम समझते है। अपनी स्पष्ट अभिव्यंजना के लिए जब कि अधिकांशतः परिचमी आधुनिक कला में तकनीकी कौशल दिवाना ही प्रधान हो चुका है। पश्चिमी कलाकार अपने व्यक्तित्व को ही अक्सर चित्र में अधिव्यक्त करने का प्रयास करते है, किन्तु समीक्षावादी कलाकारों का प्रयास सामाजिक भावना, आशा आकांक्षाओं को व्यक्त करने का रहता है। उनका .ष्टि कोण सामाजिक चेतना से निर्मित होता है, व्यक्तिगत अभिप्रायों से नहीं। वे उद्देश्य को ध्यान में रखकर चित्र बताते है जबकि पश्चिमी आधुनिक कलाकार निरुद्देश्य चित्र ही बनाते रहे है। सम्भवतः कला–कला के लिए है, न की भावना से।

समीक्षावाद आधुनिक भारत का प्रथम देशी तथा मौलिक कला आन्दोलन है। इसके पूर्व आधुनिक भारत में बंगाल शैली के नाम से एक आन्दोलन विकसित हुआ था, किन्तु वह नव–शास्त्रीयतावादी था और प्राचीन कला की मान्यताओं को पुनः प्रतिष्ठा प्रदान कराना चाहता था। समीक्षावाद का ऐसा कोई आग्रह नहीं है। वह प्राचीन भारतीय कला को अपनी सोच की आधार भूमि मानता है, जिस पर खड़ा हो कर वह नई सम्भावनाओं को और प्रयास करता है। बंगाल कला आन्दोलन तथा समीक्षावादी कला आन्दोलन के बीच भारत में जो कला प्रचलित रही है। उसकी मुख्य प्र.ति पाश्चात्य आधुनिक कला प्रवृत्तियों का अध्ययन, अनुकरण तथा अनुशीलन ही था। इसलिए उसे भारतीय कला का कोई मौलिक आधुनिक कला आन्दोलन नहीं माना जा सकता, यद्यपि इस बीच अनेक कुशल कलाकार उभर कर सामने आये है। कुछ एक कलाकारों ने व्यक्तिगत रूप में कुछ मौलिक प्रयोग तथा प्रयास भी किये है लेकिन उनमें से एक भी स्पष्ट रूप से उभर कर नये कला–आन्दोलन का स्वरूप नही ग्रहण कर सका। कलाकार यामिनी राय तथ अमृता शेरगिल ही ऐसे दो नाम उभर कर सामने आते है। जिसकी कला में क्रान्ति के कुछ लक्षण दिखाई पड़े थे, किन्तु वे भी किसी नये, मौलिक तथा आधुनिक भारतीय कला–आन्दोलन को उभारते तथा विकसित करने में समर्थ नहीं हो सके। "इस .ष्टि से समीक्षावाद भारत में प्रथम आधुनिक कला का मौलिक तथा स्वदेशी आन्दोलन है।"

समीक्षावादी कला की प्रथम प्रदर्शनी दिल्ली में ऑल इंडिया फाइन आर्ट्स एण्ड क्राट सोसायटी, नई दिल्ली–१५ जनवरी से ७ जनवरी तक १९७९ में, द्वितीय प्रदर्शनी जहाँगीर आर्ट गैलरी बम्बई 3 नवम्बर से ९ नवम्बर तक १९८० में, तृतीय प्रदर्शनी गोरखपुर विश्वविद्यालय गोरखपुर १६ अक्टूबर से १९ अक्टूबर तक १९८१ में तथा चतुर्थ प्रदर्शनी एकेडेमी ऑफ फाइन आर्ट्स कलकत्ता ७३ मार्च से ७९ मार्च तक १९८७ में हुई, व प्रोफेसर रामचन्द्र शुक्ल की समीक्षावादी एकल चित्र प्रदर्शनी तथा वाराणसी में कलाकार सम्मेलन भी हुआ। प्रदर्शनी दरभंगा कक्षा इलाहाबाद विश्वविद्यालय में प्रोफेसर राम चन्द्र शुक्ल की समीक्षावादी एकल चित्र प्रदर्शनी दरभंगा कक्षा इलाहाबाद विश्वविद्यालय में ७७ फरवरी १८८४ में आयोजित की गयी। पहले प्रर्दशनी १५ जनवरी १९७९ के अखिल भारतीय कला एवं शिल्प समिति (आई फैक्स) रफी मार्ग, नई दिल्ली में प्रारम्भ हुई थी जिसका उद्घाटन अखिल भारतीय जनता पार्टी के अध्यक्षा श्री चन्द्रशेरवार ने किया था। उन्होने अपने उद्घाटन व्यक्तव में कहा था–".....यहां आकर अपने को गौरवान्वित मानता हूँ। कलाकार अभिनन्दनीय है क्योकि जन–भावनाओं को अपने तुलिका से अभिव्यक्ति देते हैं, उन्हें संजीव करते है और दूसरों को उसके प्रति सोचने के लिए प्रेरणा देते है। इस प्रदर्शनी की सफलता के लिए मेरी शुभकामनाएं

– चन्द्रशेखर

१. समीक्षावाद प्रवृत्ति का जन्म– बात १९७४ की है। जब प्रोफेसर रामचन्द्र शुल्क अपने कमरे

(चित्रकला विभाग, काशी हिन्दू विश्व विद्यालय) में बैठे कुछ काम कर रहे थे। चपरासी ने आकर सूचना दी कि एक विदेशी उनसे मिलना चाहते है। उन्होंने उससे उन्हें अन्दर लाने के लिए कहा। वह कमरे में इधर–उधर देखते उनके सामने हाथ जोड़े कर नमस्ते करते हुए खड़े हो गये। उन्होंने भी 'नमस्ते' कहा, हाथ मिलाया। उन्हें .पा पूर्वक बैठने को कहा। उन्होने उनका परिचय प्राप्त किया। वे अमरीकी कलाकार थे। युवा थे। उन्होने बताया कि उन्हें दिल्ली की ललित कला अकादमी ने अन्तर्राष्ट्रीय त्रिवार्षिकी कला प्रदर्शनी 'त्रिनाले' में भाग लेने के लिये विशेष रूप से आमत्रित किया था। वे पहले बम्बई पहुंचे थे। वहाँ उन्हें अच्छा नहीं लगा, क्योकि वह नगर उन्हें वैसा ही लगा जैसे पश्चिम' का कोई अन्य नगर। वहा उन्होंने आधुनिक कला की दीघयि भी देखी तब कलाकारों से भी मिले, उनकी .तियाँ भी देवी, पर वहाँ की समकालीन प्रचलित कला जरा भी उन्हें प्रभावित अथवा आकर्षित नहीं कर सकी। वह भी उन्हें वैसी ही दिवी जैसी पश्चिम में कलाकार कर रहे है। उन्होंने इस पर क्षोभ प्रकट किया और कहा, "मैं इतनी दूर से भारत आया था कि यहाँ आकर भारतीय कला को देख कर कलाकारों से मिल कर कुछ प्रेरणा ग्रहण करूँगा। किन्तु मुझे बड़ा पश्चाताप हुआ। यहाँ तो उसी सब की नकल की जा रही है जो हमारे देशो में पहले हो चुका है। यह सब मै देखकर क्या करूँगा? वहाँ से मुझे दिल्ली जाना था। मैंने समझ लिया कि दिल्ली भी बम्बई की तरह होगी और वहाँ भी कलाकार वही सब कर रहे होंगे जो बम्बई में हो रहा है। मैंने दिल्ली जाने का प्रोग्राम कैन्सल कर दिया। सोचा जब भारत ऐसे प्राचीन संस्.त वाले देश में आया हूँ, तो यहाँ वैसे ही जगहो पर जाना लाभकारी होगा जहाँ आज भी मौलिक संस्.ति की झलक मौजूद है।

मैंने पहले काठमांडू नेपाल की यात्रा की। वहाँ जाकर वहाँ की सांस्.ति तथा कला देख कर मै अत्यधिक प्रभावित हुआ और प्रेरणा से भर चुका हूँ। वहाँ से मैं सीधे वाराणसी आ गया जो भारत ही नही दुनिया की मौलिक कला–संस्.ति का केन्द्र है। यहाँ आकर यहाँ का सब कुछ देख कर मुझे अदभुत लगा। मुझे आश्चर्य होता है कि आपके यहाँ इतना सब कुछ है, प्रेरणा प्राप्त करने के लिये, और आप पश्चिम की ओर देखते है।" इवतज, श्री शुक्ल जी को बड़ी खुशी हुई यह सुनकर कि हमारे अमरीकी कलाकार मिल को वाराणसी इतनी प्रेरणादायक तथा अच्छी लगी। इसी बीच चपरासी चाय ले आया और वे दोनों चाय पीने लगे। चाय पी कर उन्होंने इच्छा प्रकट की श्री शुक्ल जी की कला कृतियाँ देखने की। कमरे में चारों ओर दीवार पर बनाये हुये तैल चित्र टॅगे हुये थे। यह सभी चित्र आधुनिक शैली के थे। उन्होंने काफी कुछ प्रयोगात्मक .ष्टि से इन्हें बनाया था। बल्कि उनका ख्याल था, उनके यह नये चित्र औरों के बनिस्बत काफी मौलिक धरातल के थे। उन्होंने अपने अमरीकी कलाकार मित्र से कहा कमरे में सभी मेरे उनके चित्र है. आप देखिये। उन्होंने एक क्षण उन चित्रों पर नजर डाली और पलट कर बोले, "नहीं मै, आपकी कला देखना चाहता हूँ।" प्रो० शुक्ल जी उनका यह प्रश्न समझ नहीं पाया। उन्हें लगा शायद वह इन चित्रो को छात्रों की रचनाये समझने की भूल कर रहे है। उन्होंने पुनः कहा, "यह सभी मेरे बनाये चित्र है, मेरी कला है। इस बार दुबारा मुड़ कर उन्होंने उन चित्रों की ओर .ष्टि डालना भी जरूरी नहीं समझा और बोले, "नहीं यह कला आपकी कैसे हो सकती है? यह तो हमारे देश की है। मैं तो आपकी कला देखने की बात कर रहा था।"

अब उन्हें बात समझ में आई। स्वयं पर ग्लानि भी हुई, भीतर ही भीतर एक धक्का (ावबा) सा लगा। समझ में आया कि वे कितने दिवालिया है। उनके पास अपना कुछ दिखाने की है ही नहीं। वे विदेशी आधुनिक कला की परिपाटी को ही अपना समझने की भूल कर रहे थे। एक ही मिनट में उनकी आँख खुल चुकी थी। उन्हें उनके पिछले वर्षों के काम पर पश्चाताप होने लगा था। किन्तु इसे उन्होंने अपने विदेशी कलाकार मित्र पर प्रकट नहीं करना चाहते थे। साहस बटोर कर, बात को दूसरा मोड़ देने के लिये कहा "मित्र! आज दुनिया कितनी छोटी हो

गयी है। हम एक दूसरे के कितने पास आ गये है। क्षक्षण भर में हम आपके देश हो आते है और आप यहाँ रोज आ रहे है। हम आपको पहचान रहे है, आप हमें। एक दूसरे से प्रेरणा ग्रहण कर रहे है। एक दूसरे का जीवन कला तथा प्रगति देख रहे है। आपकी कला पर पूर्व की कला का प्रभाव पड़ रहा है, पूर्व की कला पर आपकी कला प्रगति का प्रभाव पड़ रहा है। क्या यह आदान–प्रदान जरूरी नहीं? क्या ऐसे में कला का रूप एक सा नहीं होगा? क्या कला की एक अन्तर्राष्ट्रीय भाषा नहीं बन रही है?

अमरीकी कलाकार मित्र सब कुछ सुनते रहे बोले, "यह सब ठीक है पर हम जब आपके देश में इतनी दूर से, इतना कष्ट उठा कर आये है, तो क्या यही सब कुछ देखने आये है, जो हमारे देश में प्रचुर मात्रा में इससे भी बहुत अच्छा मौजूद है? हमे फिर यहाँ आने की जरूरत क्या थी"।

जो भी हो इस घटना ने श्री शुक्ल जी अपने किये कराये पर पुनर्विचार करने के लिये तथा नया निश्चय करने के लिये बाध्य कर दिया। उन्हें अच्छी तरह स्पष्ट हो गया कि अगर हम इसी प्रकार पश्चिमी आधुनिक कला की लीक पर चलते रहे तो कही के न होंगे। जितनी जल्दी इसे समझ कर अपने बनाये रास्ते पर चले उतना ही अच्छा। उन्होंने पहले निश्चय किया कि अब मैं पश्चिमी आधुनिक कला के प्रभाव से पूरी तरह मुक्त होने का जान–बूझ कर प्रयास करूंगा।

दूसरी तरफ यह भी जरूरी था कि अपना मौलिक रास्ता बनाने के लिये भी पुरानी कला के लीक पर चलना छोड़ना होगा। इतना निश्चय करने के पश्चात अपने आप प्रश्न उठता है कि तब किस रास्ते पर चला जाय? इसके लिये उन्हें यही सूझा और उचित भी लगा कि अपने देश तथा समाज की वर्तमान सामाजिक स्थिति जीवन समस्याओं, आर्थिक, राजनैतिक तथा सांस्कृतिक परिस्थितियों, समकालीन सोच तथा चेतना को ही अपनी भावी कला का मूलाधार तथा प्रेरणा स्रोत बनाया। पश्चिमी कला में प्रचलित तकनीकी खिलवाड़ तथा अनुबूझता से दूर हट कर कला की ऐसी भाषा निर्मित की जो सरलता से लोगों को प्रभावित कर सके। कला को व्यक्तिवादी कठघरे से निकाल कर समाज के मुक्त वातावरण में फलने–फूलने दिया जाय।

इसी समय बिहार से स्वर्गीय जय प्रकाश नारायण के नेतृत्व में एक देशव्यापी आन्दोलन भ्रष्टाचार के खिलाफ उठ खड़ा हुआ था। उन्हें भी लगा इस समय देश के सामने सबसे बड़ी समस्या भ्रष्टाचार शोषण तथा अनैतिक व्यवहार है। इसी से सारा देश दूषित तथा जरित हो रहा है। इसके रहते समाज में कोई प्रगति सम्भव नही है यही प्रश्न आज के भारतीय समाज की सबसे प्रत्यक्षा समकालीनता है और इससे लड़ना सबसे बड़ी आधुनिकता और यही कलाकार के लिये अभिव्यंजना की सबसे महत्वपूर्ण प्रेरणा है। ऐसा तभी सम्भव है जब तीरखे पैने प्रतीकों तथा व्यंगात्मक शैली का रास्ता अपनाया जाय।

प्रो० रामचन्द्र शुक्ल ने 'तूलिकांकन" के प्रवेशांक, मई १९७८ में इस पर चर्चा अपने लेख वाराणसी में आधुनिक कला पृष्ठ १७ में इस प्रकार की थी।

"मेरी स्वयं की शैली इधर इमर्जेंसी के दौरान एकाएक काफी कुछ बदल गई। इसके पहले से ही में अनुभव कर रहा था कि हमारे देश के लिए चित्रकला की विदेशी भाषा कुछ कारगर सिद्ध नहीं हो रही है वह प्रभाव शून्य होती जा रही है अपनी भाषा में, अपने जीवन और समाज के ज्वलन्त प्रश्नों की आम व्यंजना करना अब आवश्यक हो गया है। इमर्जेन्सी' के दौरान जो घुटन और क्रोध पैदा हुआ उसने मेरी कला को एक नई सड़क पर चलने के लिये बाध्य कर दिया है अब मेरा प्रयास अपने चित्रों में समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार करारी चोट करने का हो गया है। शैली देखने में अत्यन्त स्पष्ट और पैनी तो है ही समीक्षात्मक दृष्टि प्रमुख हो गयी है। इधर के अपने चित्रों की शैली को मैने समीक्षावाद' कहाँ है।"

समीक्षावाद दृष्टिकोण इधर नवोदित कलाकारों में काफी प्रचलित हो रहा है जिसमें उल्लेखनीय है रवीन्द्रनाथ मिश्र, ह्रदयनारायण मिश्र, सन्तोष कुमार

सिंह तथा वीरेन्द्र प्रताप सिंह। रवीन्द्र नाथ मिश्र ने प्रौढ़ तथा तीक्ष्ण रेखांकन के माध्यम से आज के आतताइयों और पीड़ित मानवता का चित्रण किया है। ह्रदय नारायण मिश्र ने यद्यपि फेंटेसी' का सहारा लिया है किन्तू मूलरूप में सामाजिक समीक्षाएँ ही प्रस्तुत की है। सन्तोष कुमार सिंह ने आन्दोलित युवा मानव की अभिव्यंजना के साथ व्यंगात्मक ढंग से सामाजिक भ्रष्टाचार पर बड़े पैने रंग और रेखाओं के माध्यम से अभिव्यंजना की है। वीरेन्द्र प्रताप सिंह ने लोक शैली का सहारा ले आज के असंगत जीवन की अपने चित्र में प्रतीकात्मक ढंग से समीक्षायें की है। राम शब्द सिंह ने आधुनिक जीवन की अतिव्यस्तता और ह्रदय–हीनता के बीच गहरा एकाकीपन महसूस किया है और समीक्षात्मक ढंग से अभिव्यजित करने का प्रयास किया है। समीक्षा की प्रवृत्ति वाराणसी के जागरूक नवोदित कलाकारों की मूल प्रवृत्ति सी बनती जा रही है और नयी आशाओं से भरी हुई है। इस प्रकार ये समीक्षावादी चित्रकार कला की विदेशी भाषा को त्याग कर मौलिक अभिव्यंजना की ओर अग्रसर है।

इन्हीं बातो पर समीक्षावादी कला के प्रमुख चित्रकार प्रोफेसर रामचन्द्र शुक्ल सोच–विचार तथा कलागत प्रयोग करने लगे थे। साथ ही साथ अन्य कलाकार मित्र भी इस पर, विचार–विमर्श करने लगे, जिनमें काशी के ही उनके सहयोगी कलाकार श्री रघुवीरसेन धीर और उनके ही शिष्कार श्री सन्तोष कुमार सिंह, श्री वेद प्रकाश मिश्र, अलीगढ़ के मित्र कलाकार श्री गोपाल मधुकर चतुर्वेदी तथा इलाहाबाद के मित्र कलाकार श्री बालादत्त पांडे प्रमुख है। सभी इस बात से सहमत हुये कि इस आधार पर चित्र बनाये जाये, प्रदर्शनिया की जाये। इन्हीं बातों को ध्यान में रखते हुये एक घोषणा–पत्र भी तैयार किया जाय प्रथम प्रदर्शनी के अवसर पर वितरित करने के लिये। श्री शुक्ल जी एक ७ सूत्रीय घोषणा–पत्र तो तैयार कर लिया किन्तु इस नये कला आन्दोलन का नामकरण क्या किया जाय इस पर गाड़ी अटकी। यूँ तो घोषणा पत्र में यह भी इंगित किया गया था कि इस आन्दोलन को कोई नाम नहीं देना चाहते क्योकि कर्तृव्य शक्ति ही इसका नामकरण करेंगी फिर भी श्री राम चन्द्र शुक्ल जी के कहने पर कि बिना किसी नाम के किसी आन्दोलन का अस्तित्व क्या होगा? परिणामतः भारतीय आधुनिक कला की यह नव्य कला धारा प्रकाश में आई। इसका नामकरण अन्ततोगत्वा सर्वोचित नाम 'समीक्षावाद' ही जान पड़ा। क्योकि उन्होंने (प्रमुवा समीक्षावादी कलाकार) समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार, शोषण, अन्याय, दुराचार की समीक्षा करना ही अपनी कला का लक्ष्य ग था। सभी कलाकार बन्धुओं ने भी यह नाम स्वीकार किया। सन् १९७ में जब सभी समीक्षावादी कलाकार मिल–जुल कर दिल्ली की आल इन्डिया फाइन आर्ट्स एण्ड क्राट सोसाइटी की कला–दीर्घा में अपनी प्रथम प्रदर्शनी आयोजित की घोषणा–पत्र भी प्रस्तुत किया। इसके पश्चात् इसी नाम से उन्होने मिर्जापुर, गोरखपुर, बम्बई तथा कलकत्ता में भी प्रदर्शनियाँ आयोजित की। सैकड़ों, पत्र पत्रिकाओं रेडियो, टेलीविजन, साप्ताहिकों में इस कला आन्दोलन की चर्चा हो चुकी है और हो रही है। सम्पूर्ण भारतीय कला क्षोत्र में इस नये आन्दोलन की चर्चा हो रही है। भारतीय आधुनिक कला को पश्चिमी आधुनिक कला की लीक छोड़ कर अपना मौलिक रास्ता बनाने की एक नई प्रेरणा मिली है 'समीक्षावाद' के रूप में।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. संदर्भ–संकेत समीक्षा वाद (एक कदम और आगे) लेखक–डा० गोपाल मधुकर चतुरवेदी से साभार।
2. आधुनिक कला समीक्षावाद, लेखक प्रो० रामचन्द्र षुक्ल से साभार।
3. आधुनिक कला का विकल्पः "समीक्षावाद "लेखक, बालादत्त पाण्डे से साभार।
4. श्री केसरी कुमार मेहरोवा एवं डा० कमलेष दत्त पाण्डे के विचारों से साभार

*****